

आधुनिक हिन्दी साहित्य : प्रकृति तथा पर्यावरण

डॉ. एल. पी. लमाणी

हिन्दी विभाग,

कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण में अंतर नहीं किया जाता जो किया जाना जरूरी है। प्रकृति और मनुष्य का साथ मनुष्य के इस धरती पर अस्तित्व के साथ ही है। मनुष्य ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आरंभ में प्रकृति को समझने, उसे नियंत्रित करने और अनुकूल बनाने की कोशिश की। फिर भी प्रकृति के अनसुलझे जटिल रहस्यों के आगे उसे कई बार चमत्कृत होना पड़ा। बड़ी मात्रा में प्रकृति और उसकी शक्तियां मनुष्य के नियंत्रण से बाहर ही रहीं। मनुष्य प्रकृति की देखी-अनदेखी शक्तियों से डरा और उसे प्रसन्न करने के लिए उसकी वंदना में ऋचा गीत लिख डाले। दुर्दम्य प्रकृति को उसने उस मात्रा में अपने अनुकूल बना लिया जितना कि उसके जीवन रक्षा के लिए आवश्यक था। वेद की ऋचाएं हों या आदि कवि की वाणी, सबमें प्रकृति और मनुष्य का सहज संबंध व्यक्त है। रामायण-महाभारत, कालिदास, संस्कृत साहित्य की अन्य महाकाव्यात्मक कलेवर वाली रचनाओं में प्रकृति और मनुष्य का सहज संबंध नजर आता है।

इन्हीं महाकाव्यात्मक कथानकों को आधार बनाकर आधुनिक काल में लिखी गई कई रचनाओं में जनजीवन और प्रकृति का बदला हुआ संबंध साफ देखा जा सकता है। मसलन 'साकेत' की उर्मिला अफसोस व्यक्त करते हुए कहती हैं, "मेरे उपवन के हरिण आज वनचारि।" लेकिन वाल्मीकि रामायण या शाकुंतलम् नाटक में प्रकृति और मनुष्य के बीच की दूरी न्यूनतम है। इन कृतियों में राजपरिवार के लोगों को प्रकृति के बीच वनवासियों की तरह रहने में कोई विशेष असहजता नहीं होती। प्रकृति और मनुष्य-जीवन ज्यादा से ज्यादा संपृक्त है। बाद के काल में संस्कृत के विद्वान राजशेखर ने राजा के दरबार, राजभवन, उपवन आदि का जो वर्णन किया है, वह भी वन्यजीवों, शुक-सारिकाओं, लता-गुल्मों, उपवनों आदि से भरा है। इसे राजभवन के सुखों के बीच एक तरह का जंगल-मिनीएचर कह सकते हैं।

आदिकालीन वीरकाव्यात्मक रचनाओं में प्रकृति का वर्णन वीरकाव्य की पृष्ठभूमि के अनुरूप हुआ है। साथ ही एक दूसरा बड़ा क्षेत्र जीवन की क्षणभंगुरता को दिखाने के लिए प्रकृति को उपदेशक की तरह पेश करना है। कबीर आदि भक्त कवियों में यह बखूबी देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, "दिन दस फूला फूलिकै खंखड़ भया पलाश।" अथवा "माली आवत देखिकै कलियां करै पुकार, फूली फली सब चुन लियो काल्ह हमारी बार।"

इसी तरह गर्मी के मौसम की विकटता को प्रकट करने के लिए बिहारी ने लिखा- "कहलाने एके बसत अहि मयूर, मृग बाघ जगत तपोवन सों कियो दीरघ दाघ निदाघ" प्रेमाख्यानक काव्य-परंपरा में रानी नागमति, राजा रत्नसेन के वियोग के कारण होने वाली असुविधाओं का वर्णन उसी तरह करती है जिस तरह कोई साधारण कृषक वधू कर सकती है। कृषक जीवनशैली और प्रकृति के साथ सहमेल को मध्यकालीन काव्य में आसानी से देखा जा सकता है। रानी नागमति कहती है कि बरसात की ऋतु आ गई है, मेरा कंत विदेश है। उसके बिना बरसात में टपकने से बचाव के लिए मेरे भवन का छप्पर कौन छावेगा? इसी तरह अन्यत्र कहती है-

“बरसे मघा झकोरि झकोरि, मोरे दुइ नैन चुवै जस ओरि।” (पद्मावत-मलिक मुहम्मद जायसी) ‘ओरि’ सिर्फ एक शब्द नहीं है। इसमें किसान घरों की सम्पूर्ण संरचना अन्तर्निहित है। ओसारे वाले आंगन में ‘ओरि’ पहले छप्पर वाले घरों में खपरैल की बनी होती थी, छत से गिरनेवाले बरसात के पानी की ये निकासी थीं। छोटे बच्चे आंगन में ओरि से धार से गिरने वाले पानी के नीचे नहाने का आनंद भी लिया करते थे। दिलचस्प है कि कवि बरसात का वर्णन करते समय रानी की राजसी जीवनशैली और महल की भव्य-संरचना की बात न कर खपरैल और फूस के घर तथा ओरि के चूने का दुख व्यक्त करवा रहा है! यह आम जीवन और प्रकृति के बीच सामंजस्य का सुंदर नमूना है।

प्रकृति के साथ तालमेल और उत्प्रेरणा का शानदार उदाहरण आधुनिककाल के हिंदी साहित्य का छायावादी काव्य है। यहां प्रकृति सिर्फ लुभाती नहीं है। वह प्रसन्नता तथा सुख-दुख की साथिन भर नहीं है। वह प्रेरणा है बंधन से मुक्ति की! ध्यान रखना चाहिए कि यह 1930 के दौर का भारत है। औपनिवेशिक गुलामी के बंधन में छटपटाता। प्रकृति की उन्मुक्तता, बंधनहीनता, आत्मीयता निराशापूर्ण वातावरण में आशा और उत्फुल्लता का संचार करती है। मनुष्य को अपने बंधनों से मुक्त होकर स्वतंत्र भाव से जीने की प्रेरणा इस दौर के रचनाकारों को प्रकृति से मिली। इन रचनाकारों के यहां प्रकृति को एक नया रूप मिला, वह प्रकृति तो थी ही, मानवी भी बनी।

प्रकृति के साथ तालमेल और उत्प्रेरणा का शानदार उदाहरण आधुनिककाल के हिंदी साहित्य का छायावादी काव्य है। यहां प्रकृति सिर्फ लुभाती नहीं है। वह प्रसन्नता तथा सुख-दुख की साथिन भर नहीं है। वह प्रेरणा है बंधन से मुक्ति की! ध्यान रखना चाहिए कि यह 1930 के दौर का भारत है। औपनिवेशिक गुलामी के बंधन में छटपटाता। प्रकृति की उन्मुक्तता, बंधनहीनता, आत्मीयता निराशापूर्ण वातावरण में आशा और उत्फुल्लता का संचार करती है। मनुष्य को अपने बंधनों से मुक्त होकर स्वतंत्र भाव से जीने की प्रेरणा इस दौर के रचनाकारों को प्रकृति से मिली। इन रचनाकारों के यहां प्रकृति को एक नया रूप मिला, वह प्रकृति तो थी ही, मानवी भी बनी।

प्रकृति का मनुष्य बनना, यह अद्भुत संवृत्ति थी जो छायावाद में घटित हुई। सबसे पहले छायावाद और प्रकृति के इस निराले संबंध की पहचान महादेवी ने अपने विचार साहित्य में की और फिर नामवर सिंह ने ‘छायावाद’ शीर्षक से लिखी गई अपनी आलोचना पुस्तक में यह स्थापित किया कि छायावादी कवियों को अपने बंधनों-सामाजिक और राजनीतिक- दोनों से मुक्त होने की प्रेरणा प्रकृति से मिली। छायावाद का वर्गाधार भिन्न था। मध्यवर्गीय सामंती परिवेश में पले-बढ़े युवक-युवतियों को लगा कि ‘द वर्ल्ड इज टू मच विद अस’! इस तरह छायावाद और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के बीच का संबंध सेतु प्रकृति ही बनी। ‘कामायनी’(जयशंकर प्रसाद) की चिंता प्रकृति और मनुष्य-समाज के बीच का बढ़ता अपरिचय और असंतुलन है। इसका कारण प्रसाद ने आधुनिक पूंजीवादी सभ्यता के लालच को ठहराया है। जीने के लिए जरूरी चीजों से ज्यादा प्रकृति के पास है लेकिन मनुष्य के लालच और मुनाफे के लिए नहीं। लालच से असंतुलित होकर प्रकृति क्रुद्ध रूप धारण करती है और फिर सब कुछ नष्ट हो जाता है। प्रसंगवश कह दूं कि वर्तमान समय में सीमाहीन पूंजीवादी लालच का दूसरा नाम विकास है। इसके कारण हम आज पर्यावरण असंतुलन की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं।

‘कामायनी’ संभवतः पहली रचना है जिसमें प्रकृति और पर्यावरण को अलग-अलग करके देखा गया है और पर्यावरण असंतुलन की समस्या पर विचार किया गया है। कथा में प्राकृतिक घटनाओं के अबूझ रहस्यों को प्रस्तुत करने का इन दिनों अंग्रेजी साहित्य में जो चलन है, इससे बहुत पहले सन् 1936 में ‘कामायनी’ में प्रसाद ने पुराकथा का सहारा लेकर सृष्टि के विनाश की कहानी कही। इस कृति में प्रकृति के मोहक और विकराल दोनों रूप हैं, इनके अलावा भी प्रकृति विविध रूपों में मौजूद है। देव-सभ्यता के नष्ट होने के कारण के रूप में जयशंकर प्रसाद को देवताओं की अकर्मण्यता और प्रकृति का असंतुलित दोहन दिखाई देता है। प्रकृति देवताओं की असहिष्णु, अकर्मण्य और लालची प्रवृत्ति से क्षुब्ध होकर विकराल रूप ग्रहण करती है और फिर जलप्लावन होता है जिसमें देव-सभ्यता नष्ट हो जाती है। जयशंकर प्रसाद कामायनी में लिखते हैं-

“प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित

हम सब थे भूले मद में

भोले थे, हां तिरते केवल

सब विलासिता के नद में।

वे सब डूबे, डूबा उनका

विभव, बन गया पारावार

उमड़ रहा है देव सुखों पर

दुख जलधि का नाद अपार”

प्रकृति के पास ध्वंस के बाद सुधार और नवरचना का अपना तंत्र भी है। प्रकृति अपने भीतर हुई तोड़-फोड़ और ध्वंस को भरसक स्वयं ही दुरुस्त भी करती है, बशर्ते पुनः अनाधिकार लालची हस्तक्षेप न हो। प्रलय की रात्रि बीत जाने के बाद प्रातः का चित्र इस प्रकार आता है- “उषा सुनहले तीर बरसती, जय-लक्ष्मी-सी उदित हुई, उधर पराजित काल-रात्रि भी, जल में अंतर्निहित हुई”

छायावाद के महत्वपूर्ण कवि सुमित्रानंदन पंत ‘प्रकृति के सुकुमार कवि’ कहलाए तो सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ ने स्वयं को ‘वसंत का अग्रदूत’ कहा। महादेवी ‘पथ के साथी’ के रूप में सोना हिरणी, गिल्लू गिलहरी आदि को अमर कर गईं। साथ ही जब भारतीय स्त्रियों की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थिति का विवेचन करने बैठीं तो प्रकृति की बंधनहीनता और उन्मुक्त छवि से प्रेरित हुईं और सन् 1942 में जब पुस्तक छपी तो नाम दिया ‘श्रृंखला की कड़ियां’। माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी प्रसिद्ध कविता का नाम रखा- ‘कैदी और कोकिला’। इस कविता में कोकिला के बंधनहीन उन्मुक्त जीवन से ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीय कैदी की दशा की तुलना है।

राजनीतिक व्यवस्था, वर्ग, भावबोध और संवेदनाएं सन् 1940 के बाद बदलीं। अज्ञेय की प्रसिद्ध कविता- ‘सांप’ को देख सकते हैं जिसमें कवि आधुनिक नगरीय जीवन की धूर्तताओं और स्वार्थपरक आत्मकेन्द्रिकता पर चोट करता है-

“सांप!

तुम सभ्य तो हुए नहीं

नगर में बसना

भी तुम्हें नहीं आया।

एक बात पूछूं-(उत्तर दोगे?)

तब कैसे सीखा उसना

विष कहां पाया?"

नागार्जुन की रचना- 'वरुण के बेटे', सर्वेश्वर की 'कुआनो नदी', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'भेड़िया', चंद्रकांत देवताले की कुछ रचनाएं, नासिरा शर्मा की 'कुइयांजान', काशीनाथ सिंह का 'जंगल जातकम' रत्नेश्वर कुमार सिंह की 'एक लड़की पानी पानी' और 'रेखना मेरी जान' पर्यावरण के संदर्भ से लिखी गई हैं। नए रचनाकारों में बलराम कांवट की 'मोरीला' राजस्थान की प्रकृति को महत्वपूर्ण जगह देती है।

हिंदी के संदर्भ में महत्वपूर्ण चीज यह है कि साहित्य के अध्ययन-अध्यापन और आलोचना पद्धति का एक अंश अनिवार्यतः प्रकृति चित्रण पर टिप्पणी के रूप में रूढ़ हो चुका है। प्रकृति का चित्रण आलंबन-उद्दीपन दो रूपों में होता है-शास्त्रीय ढंग से यह सब पढ़ते-पढ़ाते पर्यावरण की वास्तविक गंभीर चुनौतियों से कहीं दूर जा पड़े हैं। प्रकृति चित्रण और पर्यावरण चिंता में बड़ा अंतर है। पर्यावरण की समस्या अंतरराष्ट्रीय समस्या है। इस समस्या पर स्टॉकहोम (1972) में आयोजित पहले अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के बाद से कई सम्मेलन हुए। इनमें संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) के बैनर तले पर्यावरण और जल संकट पर महत्वपूर्ण तथ्य सामने आए।

भारतीय उपमहाद्वीप में सन् 2025 को पाकिस्तान के लिए और सन् 2028 को भारत के लिए सबसे बड़े जलसंकट के वर्ष के रूप में चिह्नित किया गया है। इससे जुड़ा संकट पूरे विश्व के पर्यावरण को प्रभावित करेगा। पर्यावरण-संकट पर सोचने की पद्धति की शुरुआत अंग्रेजी की तरह हिंदी में कुछ छिटपुट प्रयासों के अलावा अभी ठीक से नहीं हुई है। विमर्शों के अंतर्गत 'इकोफेमिनिज्म' इस पर एक हद तक बात करता है अन्यथा सन्नटा है। विकसित देशों की पर्यावरण संबंधी चिंता और विकासशील तथा पिछड़े देशों की पर्यावरण संबंधी चिंता में क्या अंतर है? विकास का इन अलग-अलग तरह के आर्थिक विकास वाले देशों के लिए क्या मतलब है?

धरती से अंतरिक्ष तक कब्जा कर लेने और चांद को अगला टूरिस्ट स्पॉट बनाने वाले व्यवसायी बुद्धि के लोगों के लिए पर्यावरण सुरक्षा का क्या अर्थ है? विचार-साहित्य के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण रचनाएं अनुपम मिश्र की मिलती हैं, लेकिन सृजनात्मक साहित्य में पर्यावरण को केन्द्र करके लेखन का अभाव बना हुआ है। यही स्थिति हिंदी मीडिया विशेषकर सिनेमा की है। गिनती की फिल्मों को छोड़ दें तो सिनेमा इन विषयों पर कम बात नजर करती आता है।

आधार ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य ; यूग और प्रवृत्तियां- डॉ. शिवकुमार शर्मा
2. कामायनी- जयशंकर प्रसाद
3. पर्यावरण और मनुष्य - डॉ. सूर्य नारायण
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य: आचार्य गुलाबराय